श्रीरामचरितमानस के 'ज्ञान घाट : शिव- शिवा संवाद' में भारतीय नारी का आदर्श एवं जीवन मूल्य

*डॉ. अक्षांश भारद्वाज

सारांश –

जीवन में ज्ञान और कर्म का समन्वय घटित हो इसके लिए अभ्यास करना पड़ता है। भारतीय वेदांत दर्शन केवल सैद्धांतिक नहीं अपितु सर्वथा आदरणीय है। वह जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उपयोगी सिद्ध होता है। श्रीरामचरितमानस में भगवान शिव-शिवा का संवाद ज्ञान का संवाद है। यह संवाद नारी शिक्षा और उसके मूल्य के उत्थान हेतु कुशल संवाद है जिसमें हम अनेक आदर्शों एवं मूल्यों को पाते हैं।

प्रस्तावना :-

ज्ञान भारतीय जीवन का सार है। भारतीय शास्त्र एवं विद्याओं का यही लक्ष्य है। अन्तःकरण में परमज्ञान को प्रज्ज्वलित कर उसके प्रकाश से जीवन को पाथेय प्राप्त होता रहे, ऐसी यहाँ पूरी व्यवस्था है। चित्त में ज्ञान का उदय होने पर समस्त कर्म तदनुसार और तदनुरूप ही होने चाहिए, ऐसी अपेक्षा की जाती है। जीवन में निरन्तर ज्ञान प्रकट होता है। 'ज्ञानमय कर्म एवं कर्ममय ज्ञान'[1] यही भारतीय जीवन का घोष वाक्य है।

श्रीरामचरितमानस में ज्ञान का तात्पर्य- गोस्वामी तुलसीदास के अनुसार मान से रहित होकर संपूर्ण जगत् में ब्रह्म का दर्शन करना ही ज्ञान है। जो भगवान शंकराचार्य के अद्वैतवाद के अनुरूप माना जा सकता है इसीलिए गोस्वामी जी ने ज्ञान के समान दुर्लभवस्तु कोई नहीं बताई है। गोस्वामी जी का तत्त्वज्ञान समतामूलक अभेदवाद पर आधारित है। गोस्वामी तुलसीदास का विश्वास है कि परमार्थ ज्ञान ईश्वर की कृपा से ही संभव है। वे ज्ञानी को श्री राम का अति प्रिय बताते हैं फिर भी उनके अनुसार उस ज्ञानी व्यक्ति का महत्व तभी है जबकि वह रामभक्ति में लीन हो और वह श्री रामनाम रूपी मानसरोवर में अपने मन को अथवा हृदय को हंस बनाए। गोस्वामी जी के अनुसार संशय ज्ञान का शत्रु है। संशय ज्ञान में कुतर्क को मुखर करता है, संशय के समाप्त होने पर ही श्रीराम के पद में प्रीति और प्रतीति प्राप्त होती है। भगवान शिव के समान शीतल वचनों को सुनकर

गिरिजा के शरद ऋतु के धूप समान मोह का संताप मिट गया। सभी संशय समाप्त हो गए और रामस्वरूप का ज्ञान हुआ ।[2] अतः संशय और तर्क के साथ अज्ञान भी मूल तत्त्व की प्रतीति में बाधक होता है। विनय पत्रिका के अधिकांश पदों में श्री राम अथवा ब्रह्म की अभयता का कथन स्वाभाविक ही देखने को मिलता है।

विनयपत्रिका के "केशव कहि न जाय का कहिय" वाले पद में तुलसी ने स्पष्ट किया है कि स्वयं को अर्थात् आत्मा को पहचानना ही जीवन का परम अभीष्ट है। चूँकि ब्रह्म-जीव में सजातीय सम्बन्ध है, इसलिए ब्रह्म अथवा ब्रह्म राम ही चरम ज्ञेय है, यद्यपि वह 'अज्ञेय' तथा स्वयं अखण्डानंदरूप हैं उन्हें 'वेदान्तवेद्य' कहा है।[3] मानस के सरोवर वाले रूपक में तुलसी कहते हैं कि सन्त सभा सरोवर के चारों ओर लगी वाटिका है, श्रद्धा वसन्त ऋतु है, भक्ति निरूपण के विविध प्रकार इत्यादि दुमलताएँ हैं, यम-नियमादि फूल हैं और ज्ञान फल है, जिसका श्रेष्ठ रस हरि पद है जिसे वेद ने वर्णित किया है। [4]

विनय पत्रिका में वाक्य ज्ञान का उल्लेख उपलब्ध होता है। श्रीरामचरितमानस में भी अनुभव स्वरूप ज्ञान का स्पष्ट कथन हुआ है अतः गोस्वामी तुलसीदास वाक्य ज्ञान तथा अनुभव ज्ञान में भेद करते हैं। उनका स्पष्ट कथन है कि वाक्य ज्ञान की निपुणता से इस भवसागर रुपी संसार को बाहर नहीं किया जा सकता। इसके लिए अनुभव ही सहायक है-

"वाक्य ग्यान अत्यंत निपुन भव पार न पावै कोई " [5]

शास्त्र वचनों का ज्ञान अथवा वाक्य ज्ञान तब तक अभ्यंतर के अंधकार का निवारण नहीं कर सकता जब तक वह प्रकाश रूपी अनुभव ज्ञान में परिणत नहीं हो जाता।

"निज सहज अनुभव रूप तब खल भूलि अब आयो तहाँ"।[6]

गोस्वामी तुलसीदास का ज्ञान सिद्धांत :- गोस्वामी तुलसीदास के अनुसार श्रीरामचरितमानस में ज्ञान के तात्पर्य की विवेचना में एक विशेष बिंदु का प्रयोग किया गया है। ज्ञान तथा विज्ञान में उनके द्वारा किया गया अंतर बालकांड के प्रारंभ में दिखाया गया है जिसमें उन्होंने ज्ञान विज्ञान के विचार पूर्वक कथन की प्रतिज्ञा की है "कहब ग्यान विग्यान विचारी।।" लेकिन तुलसी के अंतर्मन में सदैव यह अंतर विद्यमान नहीं रहा है तुलसीदास ने श्री राम को अखंड ज्ञान कहा है साथ ही उन्हें विज्ञानघन भी बताया गया है। शास्त्रानुसार ब्रह्म निरुपण में ज्ञान विज्ञान का प्रयोग एक रस के रूप में प्रतीत होता है। वशिष्ठ नारद आदि मुनियों को ज्ञानी तथा विज्ञानी दोनों की संज्ञा दी गई है। विभीषण को भी ज्ञान निधान कहा है साथ ही अत्रि मुनि, सुतीक्ष्ण, काकभुशुण्डि, गरुड़ इत्यादि सभी

ज्ञानी बतलाए गए हैं, फिर भी जहाँ ज्ञान विज्ञान की एक प्रमुख चर्चा आयी है वहाँ यह मानना उचित प्रतीत होता है कि गोस्वामी तुलसीदास को ज्ञान और विज्ञान का विभेदीकरण अभीष्ट था। तुलसी ने ज्ञान और विज्ञान का अंतर सती और भगवान शिव के संवाद में स्पष्ट कर कहा है-

"कोटि विरक्त मध्य श्रुति कहई। सम्यक ग्यान सकत कोउ लहई॥

ग्यानवंत कोटिक महँ कोऊ। जीवन मुक्त सुकृत जग सोऊ ॥

तिन्ह सहस्र महुँ सब सुख खानी। दुर्लभ ब्रह्मलीन बिग्यानी" ॥[7]

उपर्युक्त उदाहरण से तुलसीदास की विभेदीकरण की अभीष्ट वरीयता का क्रम दिखाई देता है जिसमें क्रमशः धर्मशील, विरक्त, ज्ञानी, जीवनमुक्त और विज्ञानी हैं। इन सभी में दुर्लभ वह है जो सभी प्रकार के मद और माया से मुक्त होकर श्री राम की भक्ति में लीन है।

"सब ते सो दुर्लभ सुरसाया। रामभगति रत गत मद माया" [8]

गोस्वामी जी ने उसी के विज्ञान को अखंडित कहा है जिसके हृदय में श्री राम के पद सरोज में प्रीति उत्पन्न हुई है। अतः इस तथ्य में कोई भ्रांति नहीं होनी चाहिए कि संपूर्ण ज्ञान विज्ञान के ऊपर हरि चरणों में प्रीति रखकर अविरल भक्ति ही उसका सर्वोच्च अभीष्ट है।

श्रीरामचरितमानस में ज्ञान तथा भक्ति का समन्वय :- श्रीरामचरितमानस भक्ति ही नहीं अपितु ज्ञान का भी ग्रंथ है। तुलसीदास का कहना है कि श्रीरामचरितमानस के जल से सिंचित लताओं का फल ज्ञान है और उनका रस भक्ति है।

"भगति निरूपन बिबिध बिधाना। छमा दया दम लता बिताना ॥

सम जम नियम फूल फल ग्याना। हरि पद रति रस बेद बखाना"॥[9]

इंद्रियों के वश में होकर मनुष्य ज्ञान से दूर हो जाता है इसलिए तुलसीदास ने ज्ञान का समुचित आदर करते हुए भक्ति का उपदेश दिया है। उन्होंने मानवीय भावनाओं का मानव हित में सदुपयोग करने की प्रेरणा दी है। उनके अनुसार "भक्ति के लिए किसी जाति, बिरादरी, गरीब, अमीर आदि का कोई भेदभाव नहीं है। संभव है कि ज्ञानी कोई निश्चित व्यक्ति हो जिसे शिक्षा उपलब्ध हुई हो लेकिन भक्त सभी हो सकते हैं। स्वयं कष्ट सहकर भी निरंतर दूसरों का हित करते रहना भी भक्ति है। भक्त का बैर ज्ञान से नहीं अपितु दुर्गुणों से होता है"।

बालकांड में भगवान शिव-पार्वती से कहते हैं कि श्री राम स्वयं प्रकाश रूप है वहाँ विज्ञान और ज्ञान का अभाव नहीं होता। वह नित्य ज्ञान स्वरूप हैं और अज्ञान रूपी रात्रि वहाँ नहीं होती। श्री राम की भक्ति स्वभाव से ही ज्ञान का भंडार है इसमें कोई संदेह नहीं है इसीलिए तुलसीदास स्पष्ट कथन करते हैं -

"सुमिरत जाहि मिटइ अग्याना। सोइ सरबग्य राम भगवाना"। [10]

गोस्वामी जी के अनुसार ज्ञान और भक्ति का संबंध वही है जो जलयान और उसके चालक के मध्य होता है। साथ रहने पर दोनों के अस्तित्व का उद्देश्य सार्थक होता है और अलग होने पर दोनों अपना महत्त्व खो देते हैं।गोस्वामी तुलसीदास श्री राम लक्ष्मण और सीता को पर्णकुटी में बैठे देख कर ज्ञान, भक्ति और वैराग्य की उपमा दे देते हैं तथा उनका यह भी स्पष्ट कथन है कि बिना गुरु के ज्ञान होना दुर्गम है तथा गुरु होने के उपरांत भी यदि मन में स्वार्थ लिप्सा है तो वास्तविक ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता। स्वार्थ के प्रभाव से मनुष्य वही सोचने लगता है जो उसके हित में होता है। वैराग्य और ज्ञान दोनों के प्राप्त होने के बाद ही श्री राम भक्ति प्राप्त होती है। यदि रामभक्ति प्राप्त नहीं होती तो मनुष्य को सुख प्राप्त नहीं हो सकता। जब मनुष्य सद्गुणों के प्रति प्रेम और परहित की भावना रखता है तभी वह राम भक्त बन जाता है तथा वह जीवन पर्यंत परहित में निरत रहता है। परहित में रहने की प्रेरणा केवल सामाजिक ज्ञान से ही प्राप्त होती है। गोस्वामी जी यह जानते थे कि वह सब जान मार्ग से भी प्राप्त हो सकता हैं जो भक्ति मार्ग से चाहते हैं -

"भगतिहि ग्यानहि नहिं कछु भेदा। उभय हरहिं भव संभव खेदा"॥[11]

ज्ञान समझने में और समझाने में दोनों में कठिन है उसकी साधना भी कठिन है। यदि ज्ञान किसी प्रकार प्राप्त हो जाता है तो उसके आगे के व्यवहार में कठिनाई उपस्थित होती है। ज्ञान मार्ग तलवार की धार के समान पतला है और उससे गिरने में तनिक भी देर नहीं लगती। यदि कोई निर्भय इस मार्ग को पार कर ले तो अवश्य उसे परम पद प्राप्त हो जाता है। गोस्वामी जी के युग में शिक्षा सीमित तथा सभी के लिए संभव नहीं थी तथा उच्च शिक्षा से कितने व्यक्ति माया से निर्लिप्त रहकर वास्तविक ज्ञान प्राप्त कर सकते थे और संसार के हित में निस्वार्थ होकर अर्पित कर सकते थे। तुलसीदास जी समता के महान पुजारी थे इसीलिए इस समस्या को हल करने के लिए अपने युग में श्री राम भक्ति का उपदेश दिया। इस मार्ग से ज्ञान द्वारा सामान्य जनता माया से निर्लिप्त होकर रामराज्य की समता प्राप्त कर वास्तविक सुख एवं शांति की ओर अग्रसर होती है।

गोस्वामी तुलसीदास का उद्देश्य भी सामाजिक और धार्मिक व्यवस्था को सुव्यवस्थित करना और उनके अनुकूल ऐसे सुंदर मानव चरित्र का विकास करना था जिसमें सम्पूर्ण मानव समाज का

समान रूप से हित हो।

भगवान शिव-शिवा संवाद में जीवन मूल्य :- जीवन में ज्ञान और कर्म का समन्वय घटित हो इसके लिए अभ्यास करना पड़ता है। भारतीय वेदांत दर्शन केवल सैद्धांतिक नहीं अपितु सर्वथा आदरणीय है। वह जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उपयोगी सिद्ध होता है। श्रीरामचरितमानस में भगवान शिव-शिवा का संवाद ज्ञान का संवाद है। यह संवाद नारी शिक्षा और उसके मूल्य के उत्थान हेतु कुशल संवाद है जिसमें हम अनेक आदर्शों एवं मूल्यों को पाते हैं।

गोस्वामी तुलसीदास द्वारा रचित श्रीरामचरितमानस में उसके मूल रचयिता भगवान शिव को माना है। भगवान शिव ने ही इस कथा को सर्वप्रथम अपनी अर्द्धांगिनी उमा को सुनाया। यही कथा काकभुशुण्डि को रामभक्ति का अधिकारी पाकर के दी गई -

"सम्भु कीन्ह यह चरित सुहावा। बहुरि कृपा करि उमहि सुनावा" ॥[12]

संपूर्ण श्रीरामचरितमानस में भगवान शिव और श्रीराम समान दर्शनों के प्रतीक हैं। पार्वती भारतीय समाज की उस नारी का प्रतीक है जिसे भगवान शिव नए उभरते हुए समाज के लिए आदर्श समझते हैं और काकभुशुण्डि उस वर्ग के प्रतीक माने गए हैं जिसे समाज छोटा समझ कर त्याज्य मान लेता है।

सती और पार्वती दो विभिन्न युगों की नारियों के प्रतीक हैं। सती उस युग की स्त्री का चरित्र प्रकट करती है जिसमें नारी प्रधान है, मानव को नारी इच्छा का दमन करने का कोई अधिकार नहीं था। तत्कालीन समाज में मनुष्य का अधिकार क्रमशः बढ़ा और उसने नारी के पूर्ण अधिकार के प्रति विरोध प्रकट करना प्रारंभ किया। जैसे-जैसे मनुष्य के अधिकार बढ़ते गए उसी प्रकार नारी का अधिकार समाज में घटता चला गया। समाज में नारी का जो आदर्श प्रकट हुआ वह तत्कालीन समाज और काल का परिणाम था। पार्वती नई आदर्श नारी है जो आधुनिक युग की आदर्श नारी की प्रतीक है। मानस का स्वाध्याय करने से यह स्पष्ट होता है कि गोस्वामी तुलसीदास इस परिवर्तन के प्रबल समर्थक थे लेकिन वे यह चाहते थे कि स्त्री और पुरुष दोनों पर बंधन समान रूप से लागू हों, स्त्री-पुरुष परस्पर अधिकार का निरादर ना करें। वह स्त्री और पुरुष में एक आदर्श समन्वय के पक्षधर थे।

भगवान शिव की अर्द्धांगिनी दक्ष प्रजापति की पुत्री माता सती थीं जो नारी के सामाजिक अधिकारों के बारे में भगवान शिव से सहमत नहीं थीं। यद्यपि वे पति से प्रेम करती थीं। एक बार भगवान शिव सती के साथ अगस्त्य मुनि के आश्रम पर गए जहाँ अगस्त्य मुनि ने भगवान शिव को जगत् का ईश्वर

जानकर उनका पूजन किया। वहीं भगवान शिव ने अगस्त्य मुनि से श्री रामकथा का श्रवण किया और अत्यंत सुख माना लेकिन कथा श्रवण में सती की रुचि नहीं लगी और उनके मन में अनेक प्रकार के संशय उत्पन्न हुए । अगस्त्य ऋषि के द्वारा भगवान शिव से सुंदर हरिभक्ति पूछी गई और अगस्त्य मुनि को अधिकारी पाकर भगवान शिव ने भक्ति स्वरूप श्री राम की कथा भेंट की

"एक बार त्रेता जुग माहीं। संभु गए कुंभज रिषि पाहीं ॥

रामकथा मुनिबर्ज बखानी। सुनी महेस परम सुखु मानी ॥

रिषि पूछी हरिभगति सुहाई। कही संभु अधिकारी पाई" ॥ [13]

इसी के साथ श्री राम की अनेक गुणों की कथाएँ कहते सुनते हुए भगवान शिव दक्षकुमारी सती के साथ कैलास की ओर गए यहाँ यह बात स्पष्ट देखने योग्य है कि जब भगवान शिव सती के साथ में अगस्त्य ऋषि के पास आए तब गोस्वामी तुलसीदास ने सती के लिए 'जगज्जननी' शब्द का प्रयोग किया किंतु अगस्त्य ऋषि के प्रति श्रद्धा न लगने के कारण उनके मन में संशय उत्पन्न हुआ और उनके जाते समय गोस्वामी तुलसीदास ने उनके लिए 'दक्षकुमारी' शब्द प्रयुक्त किया जिसका अर्थ 'चतुर' था। उन्हीं दिनों अयोध्या में भगवान श्रीराम ने जन्म लिया हुआ था तथा अपने पिता के वचन का पालन करने हेतु वे साधु वेश में दंडक वन में विचर रहे थे। एक बार श्री राम अपनी खोई हुई धर्मपरायणा स्त्री सीता को खोजने के लिए वन में घूम रहे थे। भगवान शिव यह गुप्त रहस्य जानते थे, जिसे देखकर अथवा जिस लीला को देखकर भगवान शिव ने श्री राम को मन ही मन प्रणाम किया और प्रसन्न हुए लेकिन सती के मन में संदेह उत्पन्न हुआ कि श्री राम जो अपनी स्त्री के लिए बिलखते घूम रहे हैं यह भगवान शिव के आराध्य देव श्री राम तो नहीं हो सकते।

"जासु कथा कुम्भज रिषि गाई। भगति जासु मैं मुनिहि सुनाई ॥

सोइ मम इष्ट देव रघुवीरा। सेवत जाहि सदा मुनि धीरा" ॥ [14]

लेकिन सती को संशय हुआ तब भगवान शिव ने अनेक उपदेश देकर सती को समझाया लेकिन सती के न मानने पर भी भगवान शिव हरि की माया को प्रबल जानकर मुस्कुराए और बोले यदि आपके मन में संदेह है आप स्वयं जाकर श्री राम की परीक्षा ले सकती हो। सती ने भगवान शिव के उपदेश को नहीं माना और पति के विचारों के विरुद्ध अपने विचारों को प्रतिपादित करने के लिए श्रीराम की परीक्षा लेने चली। सती माता सीता का रूप धारण कर श्री राम के सामने चलने लगी। माता सीता का रूप धर कर श्री राम के आगे जाने का अभिप्राय यही था कि यदि साधारण व्यक्ति होंगे तो सती को सीता के रूप में ग्रहण कर लेंगे। परिणाम स्वरूप भगवान शिव के आराध्य श्री

राम इस सूक्ष्म परीक्षण में सफल हुए और पूरी लीला को देखकर सती को प्रणाम करते हुए बोले -

"जोरि पानि प्रभु कीन्ह प्रनामू । पिता समेत लीन्ह निज नामू ॥
कहेउ बहोरि कहाँ बृषकेतू। बिपिन अकेलि फिरहि केहि हेतू" ॥ [15]

श्री राम जो भगवान शिव के आदर्श पर चलने वाले हैं, वे अकेली वन में सती को घूमते देखकर तुरन्त पूछते हैं कि भगवान शिव कहाँ हैं और आप यहाँ वन में अकेली क्यों घूम रही हैं? पति के बिना वन में अकेली घूमना आदर्श नारी का चरित्र नहीं हो सकता है, न अपने को दूसरे की विवाहिता पत्नी के रूप में प्रस्तुत करना ही आदर्श नारी का चरित्र हो सकता है। श्री राम और भगवान शिव दोनों नारी की प्राचीन युग की स्वतन्त्रता के तुलना में नई नारी का पति परायण होना, पति को स्वामी मानना ही श्रेयस्कर समझते हैं।

सती पर इसका बड़ा प्रभाव पड़ा और उन्होंने भगवान शिव का कहना नहीं मान कर स्वयं के अज्ञान के कारण श्री राम की परीक्षा लेना अपना हिल जाना तथा भगवान शिव को अब उत्तर देने में असहज जानकर उन्हें बहुत पश्चात्ताप हुआ। सती को श्री राम की पत्नी सीता का रूप धारण कर उनके सामने जाने में कोई संकोच नहीं हुआ क्योंकि वह स्वतंत्र स्त्री का आचरण प्रकट करती हैं जो मनुष्य के प्रति अपने व्यवहारों में कहीं अधिक स्वतंत्र थी। भगवान शिव और श्री राम यह स्वतंत्रता नारी को देने के पक्ष में नहीं थे। श्रीराम ने अपने वचनों से सती के विचारों पर प्रहार किया और जब सती भगवान शिव के पास आई तो वहाँ उन्होंने सती को अपनी पत्नी के रूप में ग्रहण नहीं किया। भगवान शिव के हृदय में विशेष विषाद इस बात का था कि सती ने सीता का रूप धारण किया है। माता सीता श्री राम की पत्नी थी अतः अब परायी पत्नी के रूप में जाने वाली सती को अपनी पत्नी के रूप में वे ग्रहण नहीं कर सकते थे।

"सती कीन्ह सीता कर वेषा। शिव उर भयउ विषाद विशेषा" ॥ [16]

इससे नारी की स्वतंत्रता और बहु विवाह की प्रथा को प्रोत्साहन प्राप्त होता था जिसके भगवान शिव विरोधी हैं। उनके आराध्य देव श्रीराम भी नारी की स्वतंत्रता एवं बहुविवाह को नहीं चाहते थे। सती का सीता रूप धारण कर अकेले श्री राम के सामने जाना भले ही उनके विचारों के अनुकूल रहा हो, भारतीय संस्कृति एवं उसके मूल्यों में वह मान्य नहीं था इसलिए तुलसीदास ने स्पष्ट लिखा-

"सिव सम को रघुपति ब्रतधारी। बिनु अघ तजी सती असि नारी" ॥[17]

भगवान शिव स्वयं सती के विषय में कहते हैं कि वे उन्हें परम प्रिय हैं अतः वह उन्हें त्याग नहीं सकते हैं किंतु उनके हृदय में इस बात का बहुत अधिक संताप हुआ कि उन्होंने उनके आराध्य की

पत्नी का वेश धारण कर लिया। इस प्रकार सती और भगवान शिव के मध्य केवल विचारों का संघर्ष था, दोनों के प्रेम में कोई कमी नहीं थी।

सती नारी की पूर्ण स्वतंत्रता को नए समाज में भी कायम रखना चाहती थी जबकि भगवान शिव समाज में नारी पुरुष के आदर्श संबंधों के समर्थक थे। अंत में इस वैचारिक द्वंद्व में भगवान शिव विजय प्राप्त करते हैं। सती का प्रेम भी भगवान शिव को अपने विचारों में परिवर्तन कराने में सफल नहीं हो सका और भगवान शिव उस स्त्री को जो एक बार भी पराई स्त्री का रूप धारण कर सकती है उन्हें ग्रहण नहीं कर सके। नारी के संबंधों के सन्दर्भ में यह विचार संघर्ष समाज में इस रूप में नहीं था कि एक ओर केवल स्त्रियाँ हो और दूसरी ओर केवल पुरुष बल्कि बहुत से पुरुष स्त्रियों के अधिकारों के समर्थक थे और बहुत सी स्त्रियाँ नारी के नए संबंधों को समर्थन देती थी।

कालांतर में भगवान शिव ने अनेक वर्षों तक सती का त्याग कर उन्हें अपराध बोध होने पर ग्रहण किया लेकिन अभी भी सती की श्रद्धा भगवान शिव के वचनों में स्थिर नहीं थी। दक्ष प्रजापति जो कि सती के पिता थे पुरानी परंपराओं के समर्थक और भगवान शिव के विचारों के विरोधी थे। इसलिए वे भगवान शिव का निरादर करते थे। एक समय दक्ष प्रजापति ने अपने मान का प्रदर्शन कराने के लिए यज्ञ का आयोजन किया जिसमें सभी देवी देवताओं को आमंत्रित किया किंतु भगवान शिव को उन्होंने अपने यज्ञ में आमंत्रित नहीं किया। सती के पूछने पर भगवान शिव ने उन्हें संपूर्ण घटनाक्रम बताया और सती के पिता के यहाँ जाने की इच्छा जानकर उन्हें वहाँ नहीं जाने की उचित शिक्षा दी कि यद्यपि इसमें सन्देह नहीं कि मित्र, स्वामी, पिता और गुरु के घर बिना बुलाये भी जाना चाहिये तो भी वहाँ कोई विरोध मानता हो, उसके घर जाने से कल्याण नहीं होता।

"जदपि मित्र प्रभु पितु गुर गेहा। जाइअ बिनु बोलेहूँ न सँदेहा ॥
तदपि बिरोध मान जहँ कोई। तहाँ गएँ कल्यानु न होई" ॥[18]

भगवान शिव ने बहुत प्रकार से समझाया पर होनहार वश सती के हृदय में बोध नहीं हुआ। सती अपने पिता के यज्ञ में गयी, किन्तु अब वे भगवान शिव के विचारों की पक्षधर हो गई थी। वे भगवान शिव से प्रेम करती थी। वहाँ भगवान शिव का स्थान न पाया और यह अनादर उन्हें असहनीय हो गया। उनकी प्रेरणा से भगवान शिव के समर्थकों एवं अनुगामियों ने दक्ष प्रजापति का यज्ञ विध्वंस कर डाला और सती ने योगाग्नि द्वारा शरीर त्याग दिया और अगले जन्म में पार्वती के रूप में अवतरित हुई तथा अपना पूरा जीवन भगवान शिव को समर्पित कर नारी के आदर्श स्वरूप की प्रतीक बनी। भगवान शिव ने उन्हें इस स्वरूप में अंगीकार किया और पुनः उन्हें अपनी पत्नी के रूप में वरण किया। आज तक हिन्दू समाज में यही पार्वती गौरी के रूप में स्त्री पुरुषों के हर मंगल

कार्य में पूजी जाती हैं और उनकी पति-परायणता नारी का आदर्श बन गई है।

भारतीय नारी का यह आदर्श है कि वह एक बार अपने पति का वरण कर लेने के पश्चात् फिर उसे परिवर्तित नहीं करती। वह अनेक सांसारिक कारणों के उपस्थित होने पर भी पति का त्याग नहीं करती। पार्वती द्वारा वरण किए गए पति के दुर्गुणों को बतला कर सप्तर्षियों ने दूसरा पति चुनने का परामर्श दिया लेकिन भारतीय नारी अपने धर्म पर अटल रहती है।

"महादेव अवगुन भवन विष्नु सकल गुन धाम ॥

जेहि कर मनु रम जाहि सन तेहि तेहि सन काम" ॥ [19]

विवाह के उपरांत जब पार्वती भगवान शिव से मिलती है तो सविनय निवेदन करती हैं कि यदि प्रभु आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मुझे श्रीराम की कथा सुना कर मेरे मोह रूपी अज्ञान को दूर कीजिए। यहाँ यह स्पष्ट दिखाई देता है की स्त्री को अपने पति से निवेदन के स्वर में बात करने पर सब कुछ प्राप्त हो सकता है।

"तो प्रभु हरहु मोर अग्याना। कहि रघुनाथ कथा बिधि नाना" ॥ [20]

इस प्रकार पार्वती भारतीय नारी के रूप में पूर्ण रूप से अपने को भगवान शिव को समर्पित कर देती है। लेकिन गोस्वामी तुलसीदास के हृदय में नारी की पराधीनता के प्रति गहरा सरोकार भी है, वे नारी की पराधीनता के प्रति दुखित हैं इसीलिए पार्वती की माँ मैना जब अपनी पुत्री भगवान शिव को सौंपने के समय दुखी होती है तब गोस्वामी जी लिखते हैं:-

"कत विधि सृर्जी नारी जग माहीं। पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं" ॥[21]

लेकिन यह भारतीय नारी की महानता है कि वह अपना पुत्री रूपी सर्वस्व त्याग कर भी समर्पित होकर उसे उचित और आदर्श शिक्षा ही प्रदान करती है।

"करेहु सदा संकर पद पूजा। नारि धरमु पति देउ न दूजा" ॥ [22]

पार्वती को भगवान शिव को सौंपते हुए वह अपनी पुत्री को यही शिक्षा देती हैं कि सदैव भगवान शिव के चरणों में अपनी श्रद्धा रखें क्योंकि नारी के लिए पति के समान कोई दूसरा देवता नहीं है और यही नारी का धर्म है।

नारी की स्वतंत्रता ने संसार में विकृत रूप धारण कर लिया था जो समाज की प्रगति में बाधक हो रहा था और यह आवश्यक हो गया था कि स्त्रियाँ पति की इच्छा का पालन करेंनारी स्वतंत्रता ने जो रूप धारण किया था उसका विश्वरूप तुलसीदास ने श्रीरामचरितमानस में कामदेव को भगवान

शिव द्वारा भस्म किए जाने के प्रसंग में दिया है कामदेव ने जब अपना प्रभाव पूर्ण रूप से संसार में फैला दिया तो संसार की दशा बदल गई। संसार में कामदेव का प्रभाव व्याप्त हो गया था, तब भी भगवान शिव और उनके भक्त कामदेव से पराजित नहीं हो सके। नारी-पुरुष के बीच संयम का भगवान शिव का विचार विजयी हुआ। कथानुसार भगवान शिव ने कामदेव को भस्म कर दिया। भगवान शिव ने काम के उस स्वरूप को भस्म किया था, जो स्वतन्त्र होकर संसार में विचरण कर रहा था और संसार की विवेक पूर्ण प्रगति को पूर्णरूप से रोक चुका था, जिसके अन्तर्गत काम वासनाओं की पूर्ति ही मानव जीवन का एकमात्र उद्देश्य बन गया था। भगवान शिव ने ऐसे काम को जलाया, किन्तु मानव मर्यादा के अन्तर्गत काम को संसार में रहने की आजा दी, क्योंकि संसार को बनाये रखने के लिए उसकी आवश्यकता भी थी। जब कामदेव की पत्नी रति प्रार्थना करती हुई भगवान शिव के पास पहुँची तो भगवान शिव ने उससे कहा-

"अब तें रति तव नाथ कर होइहि नाम अनंगु ॥

बिनु बपु व्यापहि सबहि पुनि सुनु निज मिलन प्रसंगु" ॥ [23]

भगवान शिव का विचार था कि संसार में कामदेव मर्यादा के अन्तर्गत रहकर जीवित रहे और यह तभी सम्भव था. जब नारी पतिव्रता हो।

वहीं अत्रि ऋषि और उनकी पत्नी अनसूया श्री राम और भगवान शिव के विचारों को मानने वाली थी। वह सीता से स्त्रियों के धर्म के बारे में कहती हैं कि जो स्त्री माता-पिता और भाई की हितकारी होती है तथा मर्यादा में रहकर आचरण करती है वह सभी को प्यारी होती है।

"मातु पिता भ्राता हितकारी। मितप्रद सब सुनु राजकुमार" ॥[24]

नारी सत्ता प्रधान समाज में बढ़ी हुई अनैतिक स्वतंत्रताओं पर काबू पाने के लिए स्वभाव से नारी की अति स्वतंत्रता पर प्रतिबंध लगाना आवश्यक हो गया और सारे संसार में पितृसत्ता इन बंधनों के साथ ही मजबूत हो गई किंतु नर और नारी के मध्य स्वाभाविक प्रेम तथा समाज में एक दूसरे की अनिवार्यता इस सामाजिक संबंध को अपनी सीमाओं से बाँधे रहे। सती ने भगवान शिव का कहना नहीं माना। भगवान शिव ने सती को पत्नी के रूप में स्वीकार नहीं किया किन्तु भगवान शिव और सती में स्वाभाविक प्रेम बना रहा। सती ने भी श्री राम और भगवान शिव के सामने अपनी भूलें स्वीकार की। इस प्रकार शनैः शनैः पूरे समाज में नए परिवर्तन आए और उनके साथ नारी के नए आदर्श सामने आये।

नारी स्वतन्त्रता के प्राचीन युग में समाज में मातृ सत्ता प्रधान थी और पुरुष के अपने स्वतन्त्र

अधिकार कुछ नहीं थे, किन्तु जब मानव ने उत्पादन के साधनों में वृद्धि की तब पुरुष का स्थान समाज में नारी की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण हो गया और समाज पितृ सत्ता प्रधान बनने लगा। इस समय विचारधाराओं का महत्वपूर्ण संघर्ष चला और अन्ततः पुरुष का स्थान समाज में मुख्य बन गया। जब वंश परम्परा माता से चलती थी, तब वंशजों को जानने के लिए कठोर वैवाहिक सम्बन्धों की आवश्यकता नहीं थी, किन्तु पितृ सत्ता प्रधान समाज में पिता को अपनी वंशावली निश्चित रखने के लिए कठोर वैवाहिक नियमों

*सहायक आचार्य, हिंदी विभाग
भाषा एवं मानविकी पीठ
राजस्थान केन्द्रीय विश्वविद्यालय,अजमेर

संदर्भ ग्रन्थः-

1. ज्ञान का स्वरुप – प्रो. त्रिपाठी
2. श्रीरामचरितमानस, 1/32/4
3. विनय पत्रिका
4. श्रीरामचरितमानस, 1/14/4
5. विनय पत्रिका
6. वही 136/2
7. श्रीरामचरितमानस, 7/53/2,3
8. वही, 7/53/4
9. वही, 1/36/7
10. वही, 1/52/2
11. वही. 7/114/7
12. वही. 1/29/2
13. वही, 1/47/1,2
14. वही, 1/40/4

15. वही, 1/42/4
16. वही. 1/45/4
17. वही, 1/103/4
18. वही. 1/61/3.4
19. वही, 1/80
20. वही, 1/107/1
21. वही. 1/101/3
22. वही, 1/101/2
23. वही, 1/87
24. वही, 3/4/3,4
25. वही, 2/55/1
26. वही, 3/4/6-8
27. वही, 7/22/4